रामविलास शर्मा

हिन्दी आलोचना के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर डॉ० रामविलास शर्मा का जन्म उन्नाव (उ० प्र०) के एक छोटे-से गाँव ऊँचगाँव सानी में 10 अक्टूबर 1912 ई० में हुआ था । उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से 1932 ई० में बी० ए० तथा 1934 ई० में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया । एम० ए० करने के बाद 1938 ई० तक शोधकार्य में व्यस्त रहे । 1938 से 1943 ई० तक उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन कार्य किया । उसके बाद वे आगरा के बलवंत राजपूत कॉलेज चले आए और 1971 ई० तक यहाँ अध्यापन कार्य करते रहे । बाद में आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति के अनुरोध पर वे के० एम० हिंदी संस्थान के निदेशक बने और यहीं से 1974 ई० में सेवानिवृत्त हुए । 1949 से 1953 ई० तक रामविलास जी भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री भी रहे । उनका निधन 30 मई 2000 ई० को दिल्ली में हुआ ।

हिंदी गद्य को रामविलास शर्मा का योगदान ऐतिहासिक है । तर्क और तथ्यों से भरी हुई साफ पारदर्शी भाषा रामविलास जी के गद्य की विशेषता है । उन्हें भाषाविज्ञान विषयक परंपरागत दृष्टि को मार्क्सवाद की वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करने तथा हिंदी आलोचना को वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करने का श्रेय प्राप्त है । देशभक्ति और मार्क्सवादी चेतना रामविलास जी का केंद्र-बिंदु है । उनकी लेखनी से वाल्मीकि और कालिदास से लेकर मुक्तिबोध तक की रचनाओं का मूल्यांकन प्रगतिवादी चेतना के आधार पर हुआ है । उन्हें न केवल प्रगति विरोधी हिंदी आलोचना की कला एवं साहित्य विषयक भ्रांतियों के निवारण का श्रेय है, बल्कि स्वयं प्रगतिवादी आलोचना द्वारा उत्पन्न अंतर्विरोधों के उन्मूलन का गौरव भी प्राप्त है ।

रामविलास जी ने हिंदी में जीवनी साहित्य को एक नया आयाम दिया । उन्हें 'निराला की साहित्य साधना' पुस्तक पर साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है । उनकी अन्य प्रमुख रचनाओं के नाम हैं – 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'भारतेन्दु हरिश्चंद्र', 'प्रेमचंद और उनका युग', 'भाषा और समाज', 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', 'भारत की भाषा समस्या', 'नयी कविता और अस्तित्ववाद', 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद', 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी', 'विराम चिह्न', 'बड़े भाई' आदि ।

पाठ के रूप में यहाँ रामविलास जी का निबंध प्रस्तुत है – 'परंपरा का मूल्यांकन' । यह निबंध इसी नाम की पुस्तक से किंचित संपादन के साथ संकलित है । यह निबंध समाज, साहित्य और परंपरा के पारस्परिक संबंधों की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मीमांसा एकसाथ करते हुए रूपाकार ग्रहण करता है । परंपरा के ज्ञान, समझ और मूल्यांकन का विवेक जगाता यह निबंध साहित्य की सामाजिक विकास में क्रांतिकारी भूमिका को भी स्पष्ट करता चलता है । नई पीढ़ी में यह निबंध परंपरा और आधुनिकता की युगानुकूल नई समझ विकसित करने में एक सार्थक हस्तक्षेप करता है ।

परम्परा का मूल्यांकन

जो लोग साहित्य में युग-परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फकीर नहीं हैं, जो रूढ़ियाँ तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परम्परा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है । जो लोग समाज में बुनियादी परिवर्तन करके वर्गहीन शोषणमुक्त समाज की रचना करना चाहते हैं; वे अपने सिद्धान्तों को ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से पुकारते हैं । जो महत्त्व ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए इतिहास का है, वही आलोचना के लिए साहित्य की परम्परा का है । साहित्य की परम्परा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है । प्रगतिशील आलोचना के ज्ञान से साहित्य की धारा मोड़ी जा सकती है और नए प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया जा सकता है । प्रगतिशील आलोचना किन्हीं अमूर्त सिद्धान्तों का संकलन नहीं है, वह साहित्य की परम्परा का मूर्त ज्ञान है । और यह ज्ञान उतना ही विकासमान है जितना साहित्य की परम्परा ।

साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन करते हुए सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित करते हैं जो शोषक वर्गों के विरुद्ध श्रमिक जनता के हितों को प्रतिबिम्बित करता है । इसके साथ हम उस साहित्य पर ध्यान देते हैं जिसकी रचना का आधार शोषित जनता का श्रम है, और यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि वह वर्तमान काल में जनता के लिए कहाँ तक उपयोगी है और उसका उपयोग किस तरह हो सकता है । इसके अलावा जो साहित्य सीधे सम्पत्तिशाली वर्गों की देख-रेख में रचा गया है और उनके वर्गहितों को प्रतिबिम्बित करता है, उसे भी परखकर देखना चाहिए कि यह अभ्युदयशील वर्ग का साहित्य है या ह्रासमान वर्ग का । यह स्मरण रखना चाहिए कि पुराने समाज में वर्गों की रूपरेखा कभी बहुत स्पष्ट नहीं रही । जहाँ पूँजीवाद का यथेष्ट विकास हो गया है, वहीं यह सम्भावना होती है कि सम्पत्तिशाली और सम्पत्तिहीन वर्ग एक-दूसरे के सामने पूरी तरह विरोधी बनकर खड़े हों । पुराने साहित्य में वर्ग-हित साफ-साफ टकराते हुए दिखाई दें, इसकी सम्भावना कम होती है । सभ्यता के अनेक तत्त्वों की तरह साहित्य में भी ऐसे तत्त्व होते हैं जो विरोधी वर्गों के काम में आते हैं । आग जलाकर खाना पकाना मानव सभ्यता का सामान्य तत्त्व बन गया है । कल-कारखानों में भाप और बिजली से चलनेवाली मशीनों का उपयोग समाजवादी व्यवस्था में होता है और पूँजीवादी व्यवस्था में भी । सभ्यता का हर स्तर वर्गयुद्ध नहीं होता । इसी तरह साहित्य का हर स्तर सम्पत्तिशाली वर्गों के हितों से बँधा हुआ नहीं रहता । साहित्य की इस व्यापकता को स्वीकार न करना वैसे ही है जैसे समाजवादी व्यवस्था में बिजली

का उपयोग न करता क्योंकि इसका आविष्कार पूँजीवादी समाज में हुआ था और उसका उपयोग भी पूँजीपतियों ने अपने हित में किया था ।

साहित्य मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से संबद्ध है । आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है । साहित्य में उसकी बहुत सी आदिम भावनाएँ प्रतिफलित होती हैं जो उसे प्राणिमात्र से जोड़ती हैं । इस बात को बार-बार कहने में कोई हानि नहीं है कि साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है । उसमें मनुष्य का इन्द्रिय-बोध, उसकी भावनाएँ भी व्यंजित होती है । साहित्य का यह पक्ष अपेक्षाकृत स्थायी होता है ।

साहित्य में विकास-प्रक्रिया उसी तरह सम्पन्न नहीं होती जैसे समाज में । सामाजिक विकास-क्रम में सामन्ती सभ्यता की अपेक्षा पूँजीवादी सभ्यता को अधिक प्रगतिशील कहा जा सकता है और पूँजीवादी सभ्यता के मुकाबले समाजवादी सभ्यता को । पुराने चरखे और करघे के मुकाबले मशीनों के व्यवहार से श्रम की उत्पादकता बहुत बढ़ गई है । पर यह आवश्यक नहीं है कि सामन्ती समाज के कवि की अपेक्षा पूँजीवादी समाज का कवि श्रेष्ठ हो । यह भी सम्भव है कि आधुनिक सभ्यता का विकास कविता के विकास का विरोधी हो और कवि स्वयं बिकाऊ माल बन रहा हो । व्यवहार में यही देखा जाता है कि 19वीं और 20वीं सदी के कवि -- क्या भारत में क्या यूरूप में -- पुराने कवियों को पीछे छोड़ रहे हैं और कहीं उनके आस-पास पहुँच जाते हैं तो अपने को धन्य मानते हैं । ये जो तमाम कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का मनन करते हैं, वे उनका अनुकरण नहीं करते, उनसे सीखते हैं, और स्वयं नई परम्पराओं को जन्म देते हैं । जो साहित्य दूसरों की नकल करके लिखा जाए, वह अधम कोटि का होता है और सांस्कृतिक असमर्थता का सूचक होता है । जो महान साहित्यकार हैं, उनकी कला की आवृत्ति नहीं हो सकती, यहाँ तक कि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने पर उनका कलात्मक सौन्दर्य ज्यों-का-त्यों नहीं बना रहता । औद्योगिक उत्पादन और कलात्मक सौन्दर्य ज्यों-का-त्यों नहीं बना रहता । औद्योगिक उत्पादन और कलात्मक उत्पादन में यह बहुत बड़ा अन्तर है । अमरीका ने ऐटमबम बनाया, रूस ने भी बनाया, पर शेक्सपियर के नाटकों जैसी चीज का उत्पादन दुबारा इंग्लैंड में भी नहीं हुआ ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मनुष्य की चेतना को आर्थिक सम्बन्धों से प्रभावित मानते हुए उसकी सापेक्ष स्वाधीनता स्वीकार करता है । आर्थिक सम्बन्धों से प्रभावित होना एक बात है, उनके द्वारा चेतना का निर्धारित होना और बात है । भौतिकवाद का अर्थ भाग्यवाद नहीं है । सब कुछ परिस्थितियों द्वारा अनिवार्यतः निर्धारित नहीं हो जाता । यदि मनुष्य परिस्थितियों का नियामक नहीं है तो परिस्थितियाँ भी मनुष्य की नियामक नहीं हैं । दोनों का सम्बन्ध द्वन्द्वात्मक है । यही कारण है कि साहित्य सापेक्षरूप में स्वाधीन होता है ।

गुलामी अमरीका में थी और गुलामी एथेन्स में थी किन्तु एथेन्स की सभ्यता ने सारे यूरूप को प्रभावित किया और गुलामों के अमरीकी मालिकों ने मानव संस्कृति को कुछ भी नहीं दिया ।

सामन्तवाद दुनियाभर में कायम रहा पर इस सामन्ती दुनिया में महान कविता के दो ही केन्द्र थे–भारत और ईरान । पूँजीवादी विकास यूरूप के तमाम देशों में हुआ पर रैफेल, लेओनार्दो दा विंची और माइकेल एंजेलो इटली की देन हैं । यहाँ हम एक ओर यह देखते हैं कि विशेष सामाजिक परिस्थितियों में कला का विकास सम्भव होता है, दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि समान सामाजिक परिस्थितियाँ होने पर भी कला का समान विकास नहीं होता । यहाँ हम असाधारण प्रतिभाशाली मनुष्यों की अद्वितीय भूमिका भी देखते हैं ।

साहित्य के निर्माण में प्रतिभाशाली मनुष्यों की भूमिका निर्णायक है । इसका यह अर्थ नहीं कि ये मनुष्य जो करते हैं, वह सब अच्छा ही अच्छा होता है, या उनके श्रेष्ठ कृतित्व में दोष नहीं होते । कला का पूर्णतः निर्दोष होना भी एक दोष है । ऐसी कला निर्जीव होती है । इसीलिए प्रतिभाशाली मनुष्यों की अद्वितीय उपलब्धियों के बाद कुछ नया और उल्लेखनीय करने की गुंजाइश बनी रहती है । आजकल व्यक्ति पूजा की काफी निन्दा की जाती है । किन्तु जो लोग सबसे ज्यादा व्यक्ति पूजा की निन्दा करते हैं, वे सबसे ज्यादा व्यक्ति पूजा का प्रचार भी करते हैं । यदि कोई भी साहित्यकार आलोचना से परे नहीं है, तो राजनीतिज्ञ यह दावा और भी नहीं कर सकते, इसलिए कि साहित्य के मूल्य, राजनीतिक मूल्यों की अपेक्षा, अधिक स्थायी हैं । अंग्रेज कवि टेनीसन ने लैटिन कवि वर्जिल पर एक बड़ी अच्छी कविता लिखी थी । इसमें उन्होंने कहा है कि रोमन साम्राज्य का वैभव समाप्त हो गया पर वर्जिल के काव्य सागर की ध्वनि-तरंगें हमें आज भी सुनाई देती हैं और हृदय को आनन्द विह्वल कर देती हैं । कह सकते हैं कि जब ब्रिटिश साम्राज्य का कोई नामलेवा और पानीदेवा न रह जाएगा, तब शेक्सपियर, मिल्टन और शेली विश्व संस्कृति के आकाश में वैसे ही जगमगाते नजर आएँगे जैसे पहले, और उनका प्रकाश पहले की अपेक्षा करोड़ों नई आँखें देखेंगी ।

साहित्य के विकास में प्रतिभाशाली मनुष्यों की तरह, जनसमुदायों और जातियों की विशेष भूमिका होती है । इसे कौन नहीं जानता कि यूरूप के सांस्कृतिक विकास में जो भूमिका प्राचीन यूनानियों की है, वह अन्य किसी जाति की नहीं है । जनसमुदाय जब एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में प्रवेश करते हैं, तब उनकी अस्मिता नष्ट नहीं हो जाती । प्राचीन यूनान अनेक गणसमाजों में बँटा हुआ था । आधुनिक यूनान एक राष्ट्र है । यह आधुनिक यूनान अपनी प्राचीन संस्कृति से अपनी एकात्मकता स्वीकार करता है या नहीं ? 19वीं सदी में शेली और बायरन ने अपनी स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले यूनानियों को ऐसी एकात्मकता पहचनवाने में बड़ा परिश्रम किया । भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान इस देश ने इसी तरह अपनी एकात्मकता पहचानी । इतिहास का प्रवाह ही ऐसा है कि वह विच्छिन्न है और अविच्छिन्न भी । मानव समाज बदलता है और अपनी पुरानी अस्मिता कायम रखता है । जो तत्त्व मानव समुदाय को एक जाति के रूप में संगठित करते हैं, उनमें इतिहास और सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर निर्मित यह अस्मिता का ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । बंगाल विभाजित हुआ और है, किन्तु जब तक पूर्वी और पश्चिमी

बंगाल के लोगों को अपनी साहित्यिक परम्परा का ज्ञान रहेगा, तब तक बंगाली जाति सांस्कृतिक रूप से अविभाजित रहेगी। विभाजित बंगाल से विभाजित पंजाब की तुलना कीजिए, तो ज्ञात हो जाएगा कि साहित्य की परम्परा का ज्ञान कहाँ ज्यादा है, कहाँ कम है, और इस न्यूनाधिक ज्ञान के सामाजिक परिणाम क्या होते हैं।

एक भाषा बोलनेवाली जाति की तरह अनेक भाषाएँ बोलनेवाले राष्ट्र की भी अस्मिता होती है। संसार में इस समय अनेक राष्ट्र बहुजातीय हैं, अनेक भाषा-भाषी हैं। जिस समय राष्ट्र के सभी तत्त्वों पर मुसीबत आती है, तब उन्हें अपनी राष्ट्रीय अस्मिता का ज्ञान बहुत अच्छी तरह हो जाता है। जिस समय हिटलर ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया, उस समय यह राष्ट्रीय अस्मिता जनता के स्वाधीनता संग्राम की समर्थ प्रेरक शक्ति बनी। सोवियत संघ के लोग हिटलर विरोधी संग्राम को उचित ही महान राष्ट्रीय (अथवा देशभक्तिपूर्ण) संग्राम कहते हैं। इस युद्ध के दौरान खासतौर से रूसी जाति ने बार-बार अपनी साहित्य-परम्परा का स्मरण किया। सोवियत समाज जारशाही रूस के समाज से भिन्न है। समाज व्यवस्था के विचार से इतिहास का प्रवाह विच्छिन्न है, जातीय अस्मिता की दृष्टि से यह प्रवाह अविच्छिन्न है। जारशाही रूस के तोल्स्तोय सोवियत समाज में पढ़े जानेवाले लोकप्रिय साहित्यकार हैं, और रूसी जाति की अस्मिता को सुदृढ़ और पुष्ट करनेवाले महान साहित्यकार हैं। समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर जातीय अस्मिता खण्डित नहीं होती वरन् और पुष्ट होती है। इसके साथ सोवियत संघ में बहुजातीय राष्ट्रीयता का पुनर्जन्म हुआ है और यह राष्ट्रीयता अब एक सामाजिक शक्ति है जैसी वह 1917 से पहले नहीं थी। जारशाही रूस में बहुत-सी जातियाँ पराधीन बनाकर रखी गई थीं। उन सब पर रूसी जाति के सामन्त और पूँजीपति शासन करते थे। जैसे और बहुत-से साम्राज्य होते हैं, वैसे ही यह भी एक साम्राज्य था। 1917 की क्रांति के बाद रूसी और गैर रूसी जातियों के आपसी संबंधों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। बहुत-सी जातियाँ सोवियत संघ में शामिल न हुईं, अलग हो गईं। कुछ विलम्ब से, दूसरे महायुद्ध से कुछ ही पहले, अन्य जातियाँ उसमें शामिल हुईं। सोवियत संघ में आज जितनी जातियाँ शामिल हैं, उनका वैसा मिला-जुला राष्ट्रीय इतिहास नहीं है, जैसा भारत की जातियों का है। राष्ट्र के गठन में इतिहास का अविच्छिन्न प्रवाह बहुत बड़ी निर्धारक शक्ति है। यूरूप के लोग यूरोपियन संस्कृति की बात करते हैं। पर यूरूप कभी राष्ट्र नहीं बना। और अब तो पूर्वी यूरूप और पश्चिमी यूरूप, दो यूरूपों का अलग उल्लेख आम बात है। संसार का कोई भी देश, बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से, इतिहास को ध्यान में रखें तो, भारत का मुकाबला नहीं कर सकता। यहाँ राष्ट्रीयता एक जाति द्वारा दूसरी जातियों पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करके स्थापित नहीं हुई। वह मुख्यत: संस्कृति और इतिहास की देन है। इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें, तो भारतीय साहित्य की आन्तरिक एकता टूट जाएगी। किसी भी बहुजातीय राष्ट्र के सामाजिक विकास में कवियों की ऐसी निर्णायक भूमिका नहीं रही, जैसी इस देश में व्यास और वाल्मीकि की है। इसलिए किसी

भी देश के लिए साहित्य की परम्परा का मूल्यांकन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना इस देश के लिए है।

यदि समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर ज़ारशाही रूस नवीन राष्ट्र के रूप में पुनर्गठित हो सकता है, तो भारत में समाजवादी व्यवस्था कायम होने पर यहाँ की राष्ट्रीय अस्मिता पहले से कितना पुष्ट होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। वास्तव में समाजवाद हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है। पूँजीवादी व्यवस्था में शक्ति का इतना अपव्यय होता है कि उसका कोई हिसाब नहीं है। देश के साधनों का सबसे अच्छा उपयोग समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है। अनेक छोटे-बड़े राष्ट्र, जो भारत से ज्यादा पिछड़े हुए थे, समाजवादी व्यवस्था कायम करने के बाद पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा शक्तिशाली हो गए हैं, और उनकी प्रगति की रफ्तार किसी भी पूँजीवादी देश की अपेक्षा तेज है। भारत की राष्ट्रीय क्षमता का पूर्ण विकास समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है।

और साहित्य की परम्परा का पूर्ण ज्ञान समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है। समाजवादी संस्कृति पुरानी संस्कृति से नाता नहीं तोड़ती, वह उसे आत्मसात करके आगे बढ़ती है। अभी हमारे देश की निरक्षर निर्धन जनता नए और पुराने साहित्य की महान उपलब्धियों के ज्ञान से वंचित है। जब वह साक्षर होगी, साहित्य पढ़ने का उसे अवकाश होगा, सुविधा होगी, तब व्यास और वाल्मीकि के करोड़ों नए पाठक होंगे। वे अनुवाद में ही नहीं, उन्हें संस्कृत में भी पढ़ेंगे। और तब इस देश में इतने बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान होगा कि सुब्रह्मण्य भारती की कविताएँ मूलभाषा में उत्तर भारत के लोग पढ़ेंगे और रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ मूलभाषा में तमिलनाडु के लोग पढ़ेंगे। यहाँ की विभिन्न भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य जातीय सीमाएँ लाँघकर सारे देश की सम्पत्ति बनेगा। जिस भाषा के बोलनेवाले अधिकतर निरक्षर हैं और अपने साहित्यकारों का बहुत से बहुत नाम सुनते हैं, वे तो इनकी रचनाएँ पढ़ेंगे ही। और तब अंग्रेजी भाषा प्रभुत्व जमाने की भाषा न होकर वास्तव में ज्ञान-अर्जन की भाषा होगी। और हम केवल अंग्रेजी नहीं, यूरूप की अनेक भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करेंगे, और एशिया की भाषाओं के साहित्य से हमारा परिचय गहरा होगा। तब मानव संस्कृति की विशद धारा में भारतीय साहित्य की गौरवशाली परम्परा का नवीन योगदान होगा।

◆ ◆ ◆

बोध और अभ्यास

पाठ के साथ

1. परंपरा का ज्ञान किनके लिए सबसे ज्यादा आवश्यक है और क्यों ?
2. परंपरा के मूल्यांकन में साहित्य के वर्गीय आधार का विवेक लेखक क्यों महत्त्वपूर्ण मानता है ?
3. साहित्य का कौन-सा पक्ष अपेक्षाकृत स्थायी होता है ? इस संबंध में लेखक की राय स्पष्ट करें ।
4. 'साहित्य में विकास प्रक्रिया उसी तरह सम्पन्न नहीं होती, जैसे समाज में' लेखक का आशय स्पष्ट कीजिए ।
5. लेखक मानव चेतना को आर्थिक संबंधों से प्रभावित मानते हुए भी उसकी सापेक्ष स्वाधीनता किन दृष्टांतों द्वारा प्रमाणित करता है ?
6. साहित्य के निर्माण में प्रतिभा की भूमिका स्वीकार करते हुए लेखक किन खतरों से आगाह करता है ?
7. राजनीतिक मूल्यों से साहित्य के मूल्य अधिक स्थायी कैसे होते हैं ?
8. जातीय अस्मिता का लेखक किस प्रसंग में उल्लेख करता है और उसका क्या महत्त्व बताता है ?
9. जातीय और राष्ट्रीय अस्मिताओं के स्वरूप का अंतर करते हुए लेखक दोनों में क्या समानता बताता है ?
10. बहुजातीय राष्ट्र की हैसियत से कोई भी देश भारत का मुकाबला क्यों नहीं कर सकता ?
11. भारत की बहुजातीयता मुख्यतः संस्कृति और इतिहास की देन है । कैसे ?
12. किस तरह समाजवाद हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता है ? इस प्रसंग में लेखक के विचारों पर प्रकाश डालें ।
13. निबंध का समापन करते हुए लेखक कैसा स्वप्न देखता है ? उसे साकार करने में परंपरा की क्या भूमिका हो सकती है ? विचार करें ।
14. साहित्य सापेक्ष रूप में स्वाधीन होता है । इस मत को प्रमाणित करने के लिए लेखक ने कौन-से तर्क और प्रमाण उपस्थित किए हैं ?
15. **व्याख्या करें –**

   विभाजित बंगाल से विभाजित पंजाब की तुलना कीजिए, तो ज्ञात हो जाएगा कि साहित्य की परंपरा का ज्ञान कहाँ ज्यादा है, कहाँ कम है और इस न्यूनाधिक ज्ञान के सामाजिक परिणाम क्या होते हैं ।

पाठ के आस-पास

1. **निम्नांकित विषयों की जानकारी शिक्षकों से प्राप्त करें -**

   (क) वर्ग-विभाजन (ख) प्रगतिशील आलोचना (ग) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद (घ) सामंतवाद, पूँजीवाद और समाजवाद (ङ) रैफेल, लियोनार्दो दा विंची, माइकेल एंजेलो (च) टेनीसन, वर्जिल, शेक्सपियर, मिल्टन, शेली (छ) जारशाही, सोवियत समाज (ज) सुब्रह्मण्यम भारती

भाषा की बात

1. पाठ से दस अविकारी शब्द चुनिए और उनका वाक्यों में प्रयोग कीजिए ।
2. **निम्नलिखित पदों में विशेष्य का परिवर्तन कीजिए –**
   बुनियादी परिवर्तन, मूर्त्त ज्ञान, अभ्युदयशील वर्ग, समाजवादी व्यवस्था, श्रमिक जनता, प्रगतिशील आलोचना, अद्वितीय भूमिका, राजनीतिक मूल्य
3. पाठ से संज्ञा के भेदों के चार-चार उदाहरण चुनें ।
4. **निम्नलिखित सर्वनामों के प्रकार बताते हुए उनका वाक्य में प्रयोग करें –**
   जो, वे, वह, यह, मैं, वैसा, कोई, कुछ, कौन, जैसा, हमारे, हम

शब्द निधि

प्रगतिशील आलोचना : जो आलोचना सामाजिक विकास को महत्त्व देती हो
भौतिकवाद : वह विचारधारा जो चेतना या भाव का मूल पदार्थ को मानती हो
अमूर्त्त : जो मूर्त्त न हो, जो दिखाई न पड़े, भावमय
विकासमान : विकास करता हुआ
प्रतिबिंबित : झलकता हुआ, जिसकी छाया दिखलाई पड़े
अभ्युदयशील : तरक्की करता हुआ, उन्नतिशील
ह्रासमान : नष्ट होता हुआ, छीजता हुआ, मरता हुआ
यथेष्ट : पर्याप्त
आदिम : अतिप्राचीन, सबसे पहला
व्यंजित : प्रकट, ध्वनित, अभिव्यक्त
पूर्ववर्ती : जो पहले से विद्यमान हो, पहले से मौजूद रहनेवाला, पूर्वज
नियामक : निर्मित और नियमबद्ध करनेवाला
द्वंद्वात्मक : जिसमें दो परस्पर विरोधी स्थितियों या पक्षों का संघर्ष हो
नामलेवा : नाम लेने वाला, उत्तराधिकारी
अस्मिता : अस्तित्व, पहचान
एकात्मकता : एकता, आत्मा की एकता
अविच्छिन्न : लगातार, निरंतर, अटूट
न्यूनाधिक : कमोबेश
समर्थ : सक्षम, सुयोग्य
वंचित : अभावग्रस्त
प्रभुत्व : अधिकार, स्वामित्व
विशद : व्यापक, विस्तृत
पुनर्गठित : फिर से व्यवस्थित
अपव्यय : फिजूलखर्ची
आत्मसात् : अपना हिस्सा बनाना, अपने में समाहित कर लेना

ABSOL